

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 70 — श्रीकृष्ण की दिनचर्या

5 October 2026



द्वारका में प्रतिदिन जगदीश्वर ब्राह्ममुहूर्त में उठते हैं, ध्यान और उपासना करते हैं और सुधर्मा सभा में विराजते हैं — जब तक एक अपरिचित दूत की पुकार और एक देवर्षि का सन्देश कहीं बड़े इतिहास का द्वार नहीं खोल देते।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस सत्तरवें अध्याय में शुकदेवजी हमें द्वारका में श्रीकृष्ण के एक दिन का साक्षी बनाते हैं — एक ऐसा दिन, जिसमें जरासन्ध के बन्दी राजाओं का दूत और युधिष्ठिर के राजसूय का समाचार लिए देवर्षि नारद पधारते हैं।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)
- अध्याय: 70 (सप्ततितम अध्याय)

- अध्याय शीर्षक: भगवान् श्रीकृष्ण की दिनचर्या
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: द्वारका — भगवान् के अन्तःपुर और सुधर्मा सभा
- केंद्रीय विषय: भगवान् की नित्य उपासना; बन्दी राजाओं की प्रार्थना; राजसूय का नारद-सन्देश; उद्धव से श्रीकृष्ण का प्रश्न
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 70, श्लोक 1–47
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

उनहत्तरवें अध्याय में देवर्षि नारद यह देखने द्वारका आए कि श्रीकृष्ण सोलह हजार रानियों के साथ कैसे रहते हैं, और उन्होंने एक ही प्रभु को हर महल में एक साथ गृहस्थ-धर्म का पालन करते पाया। योगमाया का यह विस्मय देखकर देवर्षि प्रभु का स्मरण करते हुए विदा हुए।

द्वारका में उषाकाल

रात्रि जब प्रभात की ओर ढलती, तब द्वारका की रानियाँ, पति के गले में बाँहें डाले, बाँग देते मुँगों को कोसतीं, क्योंकि उषा का अर्थ था उनसे वियोग। मन्दार-वन की वायु से जागे पक्षी वन्दीजनों की भाँति गाकर मानो श्रीकृष्ण को जगाते। उनके आलिंगन में बँधी रुक्मिणी उस परम सुन्दर मुहूर्त का स्वागत न कर पातीं, इतना अप्रिय था उन्हें प्रिय की बाँहों से अलग होना।

भगवान् की प्रातःकालीन उपासना

श्रीकृष्ण ब्राह्ममुहूर्त में उठते, आचमन करते और प्रसन्न चित्त से अपने ही स्वरूप का ध्यान करते — उस एक, स्वयंप्रकाश, अविनाशी तत्त्व का जो अन्धकार से परे है, अविद्या से सदा अछूता है, और ब्रह्म कहलाता है।

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः ।

दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥ ४ ॥

brāhme muhūrta utthāya vāry upaspr̥śya mādhaveḥ dadhyau prasanna-karaṇa ātmānaṁ tamasaḥ param

अर्थ: ब्राह्ममुहूर्त में उठकर और जल से आचमन करके माधव शान्त इन्द्रियों सहित उस आत्मतत्त्व का ध्यान करते थे जो समस्त तम से परे है। (स्कन्ध 10, अध्याय 70, श्लोक 4)

फिर वे स्नान करते, दो शुद्ध वस्त्र धारण करते, विधिपूर्वक सन्ध्या आदि नित्यकर्म करते, अग्नि में आहुति देते और मौन रहकर गायत्री का जप करते। उदय होते सूर्य के सम्मुख खड़े होकर वे उनकी उपासना करते और देवताओं, ऋषियों तथा पितरों को — जो उनकी ही किरणें हैं — जल से तृप्त करते। कुल के वृद्धों और ब्राह्मणों का सम्मान कर वे प्रतिदिन सुसज्जित ब्राह्मणों को रेशमी वस्त्र, मृगचर्म और तिल के साथ तेरह हज़ार चौरासी गौएँ देते — सीधी, नई ब्यायी, दुधारू, सोने से मढ़े सींग, चाँदी से मढ़े खुर, गले में मोतियों की मालाएँ और साथ में उनके बछड़े।

इसके बाद वे गौओं, ब्राह्मणों, देवताओं, वृद्धों और गुरुजनों को तथा समस्त प्राणियों को प्रणाम करते — क्योंकि सब उनके ही स्वरूप की विभूतियाँ हैं — और माङ्गलिक वस्तुओं का स्पर्श करते।

गोविप्रदेवतावृद्धगुरुन् भूतानि सर्वशः ।

नमस्कृत्यात्मसम्भूतीर्मङ्गलानि समस्पृशत् ॥ १० ॥

go-vīpra-devatā-vṛddha- gurūn bhūtāni sarvaśaḥ namaskṛtyātma-sambhūtir maṅgalāni samaspr̥ṣat

अर्थ: गौ, ब्राह्मण, देवता, वृद्ध और गुरुजनों को तथा सब ओर के प्राणियों को, जो उन्हीं से उत्पन्न विभूतियाँ हैं, नमस्कार करके उन्होंने मंगल पदार्थों को छुआ। (स्कन्ध 10, अध्याय 70, श्लोक 10)



प्रथम प्रकाश में प्रभु सूर्य की उपासना करते हैं, देवताओं, ऋषियों और पितरों को जल देते हैं, ब्राह्मणों को स्वर्ण-सींगों वाली दुधारू गौएँ दान करते हैं, और हर प्राणी को अपने ही स्वरूप का रूप मानकर प्रणाम करते हैं (श्लोक 10)।

श्रृंगार और प्रस्थान

मानव-लोक के आभूषण स्वयं श्रीकृष्ण फिर अपने ही वस्त्रों, आभूषणों, दिव्य मालाओं और सुगन्धित लेपों से अपना श्रृंगार करते। वे घी और दर्पण में अपना मुख देखते, गौ, वृषभ, ब्राह्मण और देव-विग्रहों के दर्शन करते, और नगर तथा अन्तःपुर के सब वर्णों के लोगों की कामनाएँ पूर्ण कर आनन्दित होते। माला, ताम्बूल और चन्दन वे पहले ब्राह्मणों को, फिर मित्रों, स्वजनों, मन्त्रियों और रानियों को देते, और उसके बाद ही स्वयं

ग्रहण करते।

तब तक सारथि सुग्रीव आदि घोड़ों से जुता परम अद्भुत रथ लाकर प्रणामपूर्वक सामने खड़ा हो जाता। सारथि का हाथ अपने हाथ में लेकर श्रीकृष्ण सात्यकि और उद्धव के साथ रथ पर ऐसे चढ़ते जैसे सूर्य उदयाचल पर आरूढ़ होता है। अन्तःपुर की स्त्रियाँ लज्जा और प्रेम भरी दृष्टि से उन्हें देखतीं और कठिनाई से विदा देतीं; उन पर मुस्कराकर, उनका मन हरते हुए प्रभु निकल पड़ते।



शृंगार पूर्ण कर श्रीकृष्ण सारथि का हाथ थामकर सात्यकि और उद्धव के साथ रथ पर आरूढ़ होते हैं, जैसे सूर्य उदयाचल पर चढ़ता है, और अन्तःपुर की स्त्रियाँ अनिच्छा भरी दृष्टि से उन्हें विदा देती हैं।

सुधर्मा सभा

समस्त वृष्णियों से घिरे प्रभु सुधर्मा नामक सभा में प्रवेश करते, जिसमें बैठने वालों को भूख-प्यास, शोक-मोह और जरा-मृत्यु — ये छह ऊर्मियाँ — स्पर्श नहीं करतीं। श्रेष्ठ सिंहासन पर विराजमान, अपनी आभा से दिशाओं को आलोकित करते, यदुवंश के सिंह-सदृश वीरों से घिरे वे तारागणों के बीच चन्द्रमा की भाँति शोभित होते। विदूषक अपने हास्य से, नटाचार्य और नर्तकियाँ अपने नृत्य से उनका मनोरंजन करते; मृदंग, वीणा, वेणु, ताल और शंख की ध्वनि के साथ सूत, मागध और वन्दीजन नाचते, गाते और स्तुति करते। कुछ ब्राह्मण वेदों की व्याख्या करते, तो कुछ पुण्यकीर्ति प्राचीन राजाओं की कथाएँ सुनाते।

बन्दी राजाओं का दूत

हे राजन्! एक दिन सभा में एक ऐसा पुरुष आया जिसे पहले कभी नहीं देखा गया था; द्वारपालों ने प्रभु को सूचना दी और उसे भीतर लाया गया। हाथ जोड़कर श्रीकृष्ण को प्रणाम कर उसने जरासन्ध द्वारा बन्दी बनाए गए राजाओं का दुःख निवेदन किया — लगभग बीस हज़ार ऐसे नरपति, जिन्होंने दिग्विजय में जरासन्ध के सामने सिर नहीं झुकाया था और जिन्हें उसने बलपूर्वक गिरिव्रज में बन्द कर रखा था।



एक अपरिचित पुरुष सभा में लाया जाता है और हाथ जोड़कर गिरिव्रज में बन्दी बीस हज़ार राजाओं की वाणी प्रभु तक पहुँचाता है — यह स्वीकारोक्ति कि राजसुख स्वप्न है, और जरासन्ध नामक कर्म-पाश से छुड़ाने की प्रार्थना (श्लोक 28-29)।

दूत ने उनका सन्देश सुनाया। ‘हे कृष्ण, अप्रमेय आत्मा कृष्ण, शरणागतों का भय हरने वाले! संसार से भयभीत और अभी भी स्वयं को आपसे भिन्न मानने वाले हम आपकी शरण में आए हैं। यहाँ के लोग निषिद्ध कर्मों में डूबे हैं और आपकी बताई एकमात्र कल्याणकारी वृत्ति — आपकी आराधना — की उपेक्षा करते हैं; पर बलवान् काल के रूप में आप अचानक उनकी जीवन-आशा काट देते हैं। उस अनिमेष प्रभु को हमारा नमस्कार। साधुओं की रक्षा और दुष्टों के दमन के लिए आप अपने अंश सहित अवतरित हुए हैं; हम समझ नहीं पाते कि कोई आपकी आज्ञा का उल्लंघन कैसे कर सकता है, और न यह कि आपके शरणागत जनों को अपने पूर्वकर्मों का फल क्यों भोगना पड़ता है।’

उनकी प्रार्थना अब स्वीकारोक्ति बन गई।

स्वप्नायितं नृपसुखं परतन्त्रमीश
शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः ।
हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं
क्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तव माययेह ॥ २८ ॥

svapnāyitaṁ nṛpa-sukhaṁ para-tantram īśa śaśvad-bhayena mṛtakena dhuraṁ vahāmaḥ hitvā tad ātmani sukhaṁ tvad-anīha-labhyaṁ kliśyāmahe ‘ti-kṛpaṇās tava māyayeha

अर्थ: हे ईश्वर! राजाओं का सुख स्वप्न जैसा और पराधीन है; सदा भयभीत इस मृतक-तुल्य देह से हम उसका भार ढोते हैं। निष्काम जनों को आपसे प्राप्त होने वाले आत्मसुख को त्यागकर हम अति दीन जीव यहाँ आपकी माया से क्लेश पा रहे हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 70, श्लोक 28)

तन्नो भवान् प्रणतशोकहराङ्घ्रियुग्मो
बद्धान् वियुङ्क्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात् ।
यो भूभुजोऽयुतमतङ्गजवीर्यमेको
बिभ्रद् रुरोध भवने मृगराडिवावीः ॥ २९ ॥

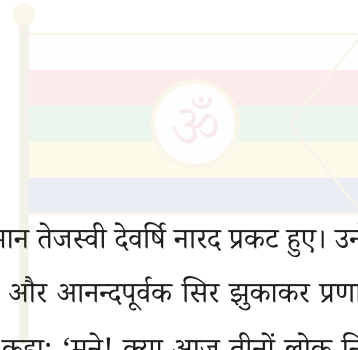
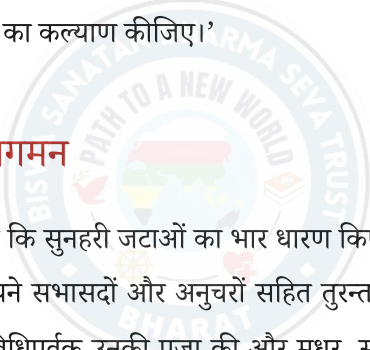
*tan no bhavān praṇata-śoka-harāṅghri-yugmo baddhān viyuṅkṣva magadhāhvaya-karma-pāśāt
yo bhū-bhujo 'yuta-mataṅgaja-vīryam eko bibhrad rurodha bhavane mṛga-rāḍ ivāvīḥ*

अर्थ: इसलिए हे प्रभु, जिनके युगल चरण प्रणत जनों का शोक हर लेते हैं, मगध नामक कर्म-पाश में बँधे हमें मुक्त कीजिए — उस जरासन्ध से, जो अकेला दस हज़ार हाथियों का बल धारण कर हम राजाओं को अपने भवन में वैसे घेरे बैठा है जैसे सिंह भेड़ों को घेर लेता है। (स्कन्ध 10, अध्याय 70, श्लोक 29)

राजाओं ने आगे कहा: ‘हे चक्रधारी! अठारह बार आपने जरासन्ध से युद्ध कर उसे पराजित किया; केवल एक बार, मनुष्य की लीला करते हुए, आपने उसे जीतने दिया, और उसी एक विजय से उसका घमण्ड बढ़ गया है; अब वह हमें, आपकी प्रजा को, सताता है। हे अजित! अब जो उचित समझें, वही कीजिए।’ दूत ने अपनी ओर से जोड़ा: ‘मगधराज के बन्दी राजा यही कहते हैं; आपके दर्शन के लिए व्याकुल वे आपके चरणों में शरणागत हैं। इन दीनों का कल्याण कीजिए।’

देवर्षि नारद का आगमन

दूत अभी बोल ही रहा था कि सुनहरी जटाओं का भार धारण किए, सूर्य के समान तेजस्वी देवर्षि नारद प्रकट हुए। उन्हें देखकर समस्त लोकेश्वरों के भी ईश्वर श्रीकृष्ण अपने सभासदों और अनुचरों सहित तुरन्त उठ खड़े हुए और आनन्दपूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम किया। नारद के आसन ग्रहण करने पर प्रभु ने विधिपूर्वक उनकी पूजा की और मधुर, सत्य वचनों में कहा: ‘मुने! क्या आज तीनों लोक निर्भय हैं? आपका लोकों में विचरण हमारे लिए बड़ा लाभ है, क्योंकि सृष्टि में कुछ भी आपसे छिपा नहीं। इसलिए हम पूछते हैं — पाण्डव क्या करना चाहते हैं?’





दूत अभी बोल ही रहा है कि देवर्षि नारद सूर्य-से तेजस्वी प्रकट होते हैं, और समस्त लोकेश्वरों के ईश्वर अपने सभासदों सहित उठकर मुनि को प्रणाम करते और पाण्डवों का कुशल पूछते हैं।

नारद राजसूय की बात कहते हैं

नारद ने उत्तर दिया: 'हे विभो! मैंने अनेक बार आपकी वह माया देखी है जिसे ब्रह्मा भी भेद नहीं सकते। जैसे काष्ठ में अग्नि छिपी रहती है, वैसे ही आप अपनी शक्तियों से सब प्राणियों में विचरते हैं; अतः पाण्डवों के विषय में आपका प्रश्न मुझे विस्मित नहीं करता। अपनी माया से आप इस जगत् की रचना और संहार करते हैं, और उसी से यह सत्-सा प्रतीत होता है। आपका संकल्प कौन जान सकता है? अतुलनीय स्वरूप वाले आपको मेरा नमस्कार।'

जीवस्य यः संसरतो विमोक्षणं

न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः ।

लीलावतारैः स्वयशःप्रदीपकं

प्राज्वालयत्त्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ३९ ॥

jīvasya yaḥ saṁsarato vimokṣaṇaṁ na jānato 'nārtha-vahāc charīrataḥ līlāvatāraiḥ sva-yaśaḥ-pradīpakaṁ prājavālayat tvā tam ahaṁ prapadye

अर्थ: संसार में भटकते जिस जीव को अनर्थों के मूल इस शरीर से छूटने का मार्ग ज्ञात नहीं, उसके लिए आपने अपने लीलावतारों द्वारा अपने यश का दीपक प्रज्वलित किया है; उन आपकी मैं शरण लेता हूँ। (स्कन्ध 10, अध्याय 70, श्लोक 39)

‘तथापि,’ नारद ने कहा, ‘परब्रह्म होकर भी आप मनुष्य-लोक का अनुकरण करते हैं, इसलिए आपके फुफेरे भाई, भक्त राजा युधिष्ठिर का संकल्प मैं निवेदन करता हूँ। पृथ्वी पर ही ब्रह्मलोक के वैभव भोगते हुए भी वे निष्काम हैं, फिर भी यज्ञों में श्रेष्ठ राजसूय से आपकी आराधना करना चाहते हैं। आप अनुमति दें। उस महायज्ञ में देवता और यशस्वी राजा आपके दर्शन की इच्छा से एकत्र होंगे।’

श्रवणात् कीर्तनाद् ध्यानात् पूयन्तेऽन्तेवसायिनः ।

तव ब्रह्ममयस्येश किमुतेक्षाभिमर्शिनः ॥ ४३ ॥

śravaṇāt kīrtanād dhyānāt pūyante 'nte-vasāyinaḥ tava brahma-mayasyeśa kim utekṣābhimarśinaḥ

अर्थ: हे ईश! ब्रह्मस्वरूप आपके श्रवण, कीर्तन और ध्यान से अन्त्यज भी पवित्र हो जाते हैं — फिर जो आपका दर्शन और स्पर्श पाते हैं, उनकी तो बात ही क्या? (स्कन्ध 10, अध्याय 70, श्लोक 43)

‘हे भुवनमंगल!’ नारद ने समाप्त किया, ‘आपका निर्मल यश स्वर्ग, पृथ्वी और रसातल में दिशाओं के वितान-सा फैला है, जैसे आपके चरणों का जल स्वर्ग में मन्दाकिनी, पाताल में भोगवती और यहाँ गंगा बनकर विश्व को पवित्र करता है।’

भगवान् उद्धव की ओर मुड़ते हैं

सभा में उपस्थित प्रभु के स्वजन, जरासन्ध को जीतने की इच्छा से भरे, देवर्षि के प्रस्ताव से प्रसन्न नहीं हुए। तब केशव मुस्कराकर अपने प्रिय भक्त उद्धव से मधुर वाणी में बोले।

त्वं हि नः परमं चक्षुः सुहृन्मन्त्रार्थतत्त्ववित् ।

अथात्र ब्रूह्यनुष्ठेयं श्रद्धध्मः करवाम तत् ॥ ४६ ॥

tvam hi naḥ paramaṁ cakṣuḥ suhṛn mantrārtha-tattva-vit athātra brūhy anuṣṭheyam śraddadhmaḥ karavāma tat

अर्थ: तुम ही हमारे परम नेत्र हो, हमारे सुहृद्, जो मन्त्रणा के वास्तविक तत्त्व को जानते हो। अतः बताओ, यहाँ क्या करणीय है; हम तुम पर श्रद्धा रखते हैं और वैसा ही करेंगे। (स्कन्ध 10, अध्याय 70, श्लोक 46)

सर्वज्ञ होकर भी अनजान की भाँति व्यवहार करने वाले अपने स्वामी के इस प्रकार पूछने पर उद्धव ने उनकी आज्ञा सिर पर धारण की और उत्तर देने लगे।



स्वजन युद्ध के लिए उत्सुक और नारद राजसूय का आग्रह करते हुए — तब केशव मुस्कराकर उद्धव को अपना परम नेत्र कहते हैं और पूछते हैं कि क्या करणीय है (श्लोक 46)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. प्रभु स्वयं जीकर नित्य साधना सिखाते हैं। जिन्हें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं, वे श्रीकृष्ण ब्राह्ममुहूर्त में उठते, ध्यान करते, सन्ध्या करते और गायत्री जपते हैं (श्लोक 4)। भक्ति को दिन का पहला प्रहर गढ़ना चाहिए।
2. किसी को भी अर्पित पूजा सबके आत्मा तक पहुँचती है। श्रीकृष्ण गौ, ब्राह्मण, वृद्ध और समस्त प्राणियों को अपने ही स्वरूप की विभूति मानकर प्रणाम करते हैं (श्लोक 10)। हर जीव के प्रति आदर उन्हीं के प्रति आदर है।
3. राजसुख स्वप्न है; कर्म-पाश केवल उनके चरण खोलते हैं। राजा स्वीकार करते हैं कि शासक का सुख पराधीन है और वे इसलिए दुःखी हैं कि उन्होंने निष्कामों को मिलने वाले आत्मसुख से मुँह मोड़ लिया (श्लोक 28); वे जरासन्ध को अपने ही कर्म का पाश कहते हैं और शरणागतों का शोक हरने वाले चरणों से उसे खोलने की प्रार्थना करते हैं (श्लोक 29)। मुक्ति शरणागति से आरम्भ होती है।
4. प्रभु का अवतार भटके जीव के लिए दीपक जलाता है। अपने लीलावतारों से वे भटकते जीव के लिए अपने यश का दीपक प्रज्वलित करते हैं (श्लोक 39), और उनका श्रवण, कीर्तन और स्मरण नीच से नीच को भी पवित्र करता है (श्लोक 43)। इसीलिए भागवत गाया जाता है।
5. सर्वज्ञ प्रभु अपने भक्त से क्यों पूछते हैं। अध्याय का गहनतम विस्मय यह है कि जो सबके नेत्र हैं, वे सब कुछ जानते हुए भी उद्धव को अपना परम नेत्र कहकर उनकी मन्त्रणा के अधीन हो जाते हैं (श्लोक 46)। नारद इसका कारण बताते हैं: प्रभु मनुष्य-लोक का अनुकरण करते हैं ताकि मनुष्य उनसे सीखें। अपने भक्त से परामर्श लेकर और समस्त प्राणियों को प्रणाम कर आत्मतृप्त प्रभु विनम्रता सिखाते हैं, अपने प्रेमियों का सम्मान करते हैं और भक्तों को अपनी योजना का सहभागी बनाते हैं — इसी सभा से राजसूय, जरासन्ध का पतन और राजाओं की मुक्ति का प्रवाह निकलेगा।

एक भाक्तेमय चिन्तन

इस अध्याय में हर महान् कर्म से पहले बस एक सवेरा है: होठों से लगा जल, अपने ही प्रकाश में विश्राम करता मन, आहुति पाती अग्नि, ब्राह्मणों की ओर कोमलता से ले जाई जाती गौएँ। जिन्हें वेद खोजते हैं, वे गौ और वृद्ध के आगे झुकते हैं। यदि वे उषा को ऐसा सम्मान देते हैं, तो हम अपनी उषा कितनी लापरवाही से बिताते हैं? फिर सभा में एक अजनबी रोता है और सूर्य-सा एक ऋषि आता है, और हम देखते हैं कि प्रभु की दिनचर्या संसार से पलायन नहीं, उसके लिए तत्परता थी। राजा केवल सेना नहीं माँगते; वे मानते हैं कि उनकी बेड़ियाँ उनके अपने कर्म हैं, और यही सच्चाई उनकी मुक्ति का आरम्भ है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

कल अपने नियत समय से कुछ पहले उठिए। जल का स्पर्श कीजिए, कुछ श्वासों तक शान्त बैठिए, और भीतर स्वयंप्रकाश आत्मा के रूप में प्रभु का स्मरण कीजिए। फिर दिन में मिलने वाले हर प्राणी — परिजन, अपरिचित, पशु — को मन ही मन उनकी उपस्थिति का वाहक मानकर प्रणाम कीजिए। आरम्भ धीरे-धीरे जपते हुए कीजिए: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

दशम स्कन्ध का सत्तरवाँ अध्याय प्रभु की सम्पूर्ण महिमा को एक ही दिन में समेट देता है — प्रातः की प्रार्थना, दीप्तिमान सभा, बन्दी राजाओं की पुकार, नारद का सन्देश और उद्धव से पूछा गया प्रश्न। परमेश्वर साधारण घड़ियों को भक्ति में जीकर पवित्र करते हैं, उनकी शरण कर्म का पाश ढीला करती है, और वे अपने भक्तों को अपना नेत्र बनाने में आनन्द पाते हैं। उनकी उषा हमारी उषा बने।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध), सप्ततितम अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-70-lord-krishnas-daily-activities-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

